सूर्यविज्ञान : मूल तन्त्र

श्री कमलेश पुण्यार्क

"सूर्यमण्डल तक ही संसार है । सूर्यमण्डल का भेदन करने के पश्चात् ही मुक्ति सम्भव है । योग की भाषा में कहें तो कहना चाहिए कि सूर्यमण्डल पर्यन्त ही प्रकृति का बन्धन है, उसके पार तो परम और परम की व्याप्ति है सिर्फ। चक्र-साधकों का सहस्रानुभूत है कि मानव शरीर में नाभिमण्डल ही सूर्यमण्डल है, जहाँ पहुँचना साधकों का "प्रथम और प्रशम" लक्ष्य होता है।"

शब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति। शब्दब्रह्म में निष्णात् ही परब्रह्म को लब्ध हो सकता है। शब्दब्रह्म के अतिक्रमण के बिना परम ब्रह्म वा परम सत्य की प्राप्ति असम्भव है। इसकी चर्चा अनेक स्थानों पर अनेक ढंग से की गयी है। वस्तुतः सूर्यमण्डलपर्यन्त ही शब्दब्रह्म की सीमा है-

अर्कं प्रवृष्टः सूर्यमण्डलपर्यन्तं व्याप्तः। तन्निर्भिद्य गतस्य संसाराभावात्। (श्रीधरस्वामी)

सूर्यमण्डल तक ही संसार है । सूर्यमण्डल का भेदन करने के पश्चात् ही मुक्ति सम्भव है । योग की भाषा में कहें तो कहना चाहिए कि सूर्यमण्डल पर्यन्त ही प्रकृति का बन्धन है, उसके पार तो परम और परम की व्याप्ति है सिर्फ। चक्र-साधकों का सहस्रानुभूत है कि मानव शरीर में नाभिमण्डल ही सूर्यमण्डल है, जहाँ पहुँचना साधकों का "प्रथम और प्रशम" लक्ष्य होता है। महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र में स्पष्ट संकेत किया है- भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।(पा.यो.वि.पा.26)

इन्हीं रहस्यों का कुछ खास संकेत अन्यत्र 'भुवनज्ञानं सूर्यसंयमात्' कहकर भी किया गया है।

इन छोटे से सूत्रों में अनेक बातों का संकेत कर दिया गया है, जो बिलकुल व्यावहारिक और गुरुगम्य है। हर बातों को तो पुस्तक में लिख कर किसी जिज्ञासु को समझाया भी नहीं जा सकता, क्योंकि एकदम प्रैक्टिकल चीजें हैं। भले ही आधुनिक विज्ञान के विद्यार्थी प्रैक्टिकल की किताबें भी पढ़ते हैं, किन्तु प्रयोगशाला के औचित्य और महत्त्व को कतई नकारा नहीं जा सकता । जंगल वा मैदान में बैठ कर तैरने की बातें खूब की जा सकती है, परन्तु तैरना सीखने के

* श्रीयोगेश्वर वास्तु-ज्योति, केन्द्र, गया

लिए तो नदी का जल अनिवार्य-अपरिहार्य है। योग्य तैराक भी साथ होना आवश्यक है, भले ही वो किनारे बैठा हो ।

सूर्योपनिषद में कहा गया है-

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्यं लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

आचार्य शौनक ने 'बृहद्देवता' में उद्घोषपूर्वक इन्हीं बातों को और भी विस्तार से कहा है कि एकमात्र सूर्य से ही भूत, वर्तमान और भविष्य के समस्त स्थावर-जंगम पदार्थ उत्पन्न होते हैं और समयानुसार उसी में लीन भी हो जाते हैं । यही प्रजापति तथा सत्-असत् के योनिस्वरुप हैं- अक्षर, अव्यय, शाश्वत ब्रह्म...।

भवद् भूतं भविष्यश्च जङ्गमं स्थावरं च यत्।
अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः॥

श्रीकृष्ण का हृदय श्रीमद्भागवत को कहा गया है । इसके ग्यारहवें स्कन्ध के अध्याय 12 श्लोक संख्या 21, 22 में बड़ा ही रोचक और रहस्यमय चित्रण है-

य एष संसारतरुः पुराणः
कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते।
द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः
पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः।
दशैकशाखो द्विसुपर्णनीड-
स्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः॥

यह कर्मात्मक संसारवृक्ष है, जिसके दो बीज, सौ मूल, तीन नाल, पांच स्कन्ध, पांच रस, ग्यारह शाखायें हैं, जिनमें दो पक्षियों का निवासस्थान है, जिसके तीन बल्कल और दो फल हैं...।

"पुराणों की रहस्यमयी शैली को हृदयंगम नहीं कर पाने के कारण हम या तो दूर से ही झांक कर निकल भागते हैं, या परले सिरे से नकार देते हैं। तन्त्र और योग में तो रहस्यमयी शब्दावलियों, संघाभाषा, कूटभाषाओं आदि का प्रयोग हुआ ही है, पुराण भी इस कला में बहुत पीछे नहीं हैं।"

पुराणों की रहस्यमयी शैली को हृदयंगम नहीं कर पाने के कारण हम या तो दूर से ही झांक कर निकल भागते हैं, या परले सिरे से नकार देते हैं। तन्त्र और योग में तो रहस्यमयी शब्दावलियों, संघाभाषा, कूटभाषाओं आदिका प्रयोग हुआ ही है, पुराण भी इस कला में बहुत पीछे नहीं हैं। आख्यान, उपाख्यान, रुपक और कथाओं के माध्यम से ही रहस्यमय विज्ञान और साधना-प्रक्रियाओं को बड़ी सहजता से व्यक्त कर दिया गया है, जो बिलकुल खुला भी है और एकदम बन्द भी । उदाहरण के तौर पर उक्त चित्रण को ही लें । उसमें प्रयुक्त शब्दों पर जरा बारी-बारी से गौर करें ।

यहाँ दो बीजों का तात्पर्य है- पाप और पुण्य- ये ही दो बीज हैं, यानी हमारे पुनर्जन्म के कारक वा कहें मुक्ति में बाधक। अकसर हम पाप को बुरा और पुण्य को अच्छा मान लेते हैं, किन्तु मुक्ति-पथ के ये दोनों

ही रोड़े हैं। दोनों बेड़ियां ही हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि एक सोने की है और दूसरी लोहे की। एक को हम आभूषण समझकर खुशी से धारण करने को उत्सुक और तत्पर रहते हैं और दूसरी वाली के प्रभाव में सहज मानव धर्मवश लुढ़क पड़ते हैं- जाने-अनजाने ही। शतमूल शब्द में शत असंख्य का द्योतक है और मूल वासना का प्रतीक। तीन नाल यानी सत्त्व,रजस्, तमस् आदि गुणत्रय। पाँच स्कन्ध यानी पृथिव्यादिपंचमहा-भूत और पाँच रस यानि शब्द, स्पर्शादि पाँच विषय। पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय और मन सहित एकादश इन्द्रियों को ही यहाँ 'शाखा' कहा गया है। इस संसारवृक्ष के सुख और दु:ख दो फल हैं। दो सुपर्ण(पक्षी) यानी जीवात्मा और परमात्मा । नीड यानी वासस्थान । तीन बल्कल(छाल) यानी वात, पित्त और कफ (त्रिदोष)।

जागतिक जंजाल को समझने के लिए श्रीमद्भागवत का ही 'पुरंजनोपाख्यान' कूटकथा पठनीय और मननीय है। यह पुरंजनोपाख्यान श्रीमद्भागवत महापुराण: चतुर्थ स्कन्ध: 25वें अध्याय में मैत्रेय एवं विदुर के संवाद के रूप में है।

इस रहस्यमय संसारवृक्ष से पार पाने हेतु सूर्यमण्डल का सम्यक् ज्ञान और फिर अति8मण अत्यावश्यक है । प्रश्नोपनिषद् 5-1 से 7 पर्यन्त वर्णन मिलता है कि उद्गीथ का अभिध्यान प्रयाणकाल पर्यन्त करने से तत्तद्भेदस्वरुप लोकों की प्राप्ति होती है। हृदय के चारों ओर असंख्य नाड़ियाँ (योगपथ, न कि आधुनिक विज्ञान वाली नस-नाडियाँ) फैली हुयी हैं। इन्हीं में एक अति सूक्ष्मपथ है जो ऊपर मूर्द्धा तक ले जाता है, जो सूर्यद्वार के अतिक्रमण में सहायक है। इस अतिक्रमण के बिना लिंग-शरीर कदापि विनष्ट नहीं हो सकता और लिंगशरीर के विनष्ट हुए बिना जीव की मुक्ति असम्भव है। जीव का शोधन रविमण्डल में पहुँचने पर ही हो सकता है। इन बातों का संकेत महाभारत में भी मिलता है।

यद्यपि कालधर्मवशात् हम इस सौरसाधना-सौरविज्ञान या कहें सावित्रीविद्या को भूल-विसार चुके हैं, किन्तु तन्मयतापूर्वक तनिक ध्यान देने का प्रयास करें, तो आसानी से समझ पायेंगे कि ब्राह्मणधर्म और वैदिक साधना की आधारभित्ति-स्वरुप यही विज्ञान है। हमारा असली तन्त्र यही है। अस्तु।

***

भगवान् सूर्य को अर्घ्य देने का मन्त्र

नमोऽस्तु सूर्याय सहस्रभानवे नमोऽस्तु वैश्वानरजातवेदसे।
त्वमेव चार्घ्यं प्रतिगृह्ण गृह्ण देवाधिदेवाय नमो नमस्ते॥
नमो भगवते तुभ्यं नमस्ते जातवेदसे। दत्तमर्घ्यं मया भानो त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते॥
ज्योतिर्मय विभो सूर्य तेजोराशे जगत्पते। अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥
एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते। अनुकम्पय मां प्रीत्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥
एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञयासहित प्रभो॥

***